



प्रवचन नं. १४ गाथा-३ ता. २२-६-७८ गुरुवार जेठ वद-२ सं.२५०४

समयसार गाथा-३ सर्व पदार्थ जितने जगत में अनंत पदार्थ हैं, अनंत आत्मायें अनंत रजकण यह सभी पदार्थ अपने द्रव्य में अंतर्मग्न रहे हुये, अपने पदार्थ में अंतर्मग्न... गुण और पर्याय यह द्रव्य में अंतर्मग्न है। आहा ! सभी अपने अनंत धर्मों में स्थित है। द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसमें अंतर्मग्न उसके गुण और पर्याय... उसके अस्तित्व में है, उसे वे चूमते हैं। अपने गुण पर्याय को वह छूता है, स्पर्श करता है, चूमता है, तब भी वह परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करते नहीं। आहाहाहा ! पदार्थों का स्वरूप... वह अपने में अनंतगुण की पर्याय को अवश्य छुए, क्योंकि अपने अस्तित्व (में) है, परंतु दूसरे पदार्थों के अस्तित्ववाले द्रव्य गुण पर्याय को... द्रव्यगुण को तो छूता नहीं, वह तो ध्रुव है, परंतु दूसरे पदार्थों की पर्याय है... उसे इस पदार्थ की पर्याय छूती नहीं। अपना द्रव्य (अन्य के) गुण (को) तो चाहे न छुए परंतु अपनी पर्याय भी दूसरे की पर्याय को छूती नहीं। आहाहाहा !

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय को छूती नहीं। इस शरीर की पर्याय... अवस्था द्रव्यगुण तो ध्रुव है जीव की पर्याय को, जीव की पर्याय ज्ञान की

हो कि राग हो उसे यह शरीर की पर्याय छूती नहीं। आहा ! उसी प्रकार अपनी राग या ज्ञान की पर्याय शरीर की पर्याय को छूती नहीं। आहाहा ! यह टोपी है वह माथे को छूती नहीं - ऐसा कहते हैं। टोपी की जो पर्याय है उसके द्रव्य गुण तो ध्रुव हैं, अब उसकी जो अवस्था है वह इस शरीर की अवस्था है यह इसे छूती नहीं, यह टोपी अपने गुण-पर्याय को स्पर्श करती हुई रहती है। यहाँ तक तो आया था।

'अत्यंत निकट' कितनी ही अनेक प्रत्येक वस्तु अत्यंत नजदीक में हैं। एक क्षेत्र में हैं। आकाश का क्षेत्र है। उसके एक क्षेत्र में अत्यंत निकट रजकण हैं एक प्रदेश में और इन प्रदेशों में अनंत जीवों के अनंत आत्मप्रदेश भी हैं, एक आकाश के प्रदेश में अनंता जीवों के असंख्यात एक जीव के, ऐसे अनंताजीवों के अनंत प्रदेश हैं और उसमें अनंत परमाणु हैं। यह एक जगह रहने पर भी... आहाहा ! एक जगह व्यापे 'फिर भी वह अपने स्वरूप से च्युत होते नहीं' आहाहा ! एक आकाश के प्रदेश में, अनंत आत्माओं के प्रदेश और उन्ही प्रदेशों में अनंत परमाणु प्रत्येक अपने अपने स्वरूप में रहता है। है न ?

सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत होते नहीं, हटते नहीं, चाहे एक जगह पर हों, फिर भी वे अपनी पर्याय से हटते नहीं। खिसककर दूसरे को छूते नहीं। एक क्षेत्र में होने पर भी, एक क्षेत्र और अत्यंत निकट... आहाहा ! प्रारम्भ की गाथाओं में बहुत गंभीरता भर दी है आहाहा ! देखो आहा ! अपने स्वरूप से च्युत होता नहीं, पररूप नहीं परिणमने के कारण... एकप्रदेश में अनंत परमाणु और अनंत जीव के प्रदेश रहने पर भी वे अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते और 'पररूप नहीं परिणमने के कारण उनकी अनंत व्यक्तता नाश को प्राप्त नहीं होती'। पररूप नहीं परिणमने, परमाणु परमाणु रूप परिणमे (और) आत्मा आत्मा की पर्यायरूप परिणमे एक ही प्रदेश में इकट्ठा रहनेपर भी एक दूसरे के कारण परिणमते नहीं, इसलिये अनंत व्यक्तता नाश को प्राप्त नहीं होती। इसलिये जितनी अनंत चीजें हैं वह एक दूसरे को स्पर्शती नहीं, परिणमित नहीं होती इसलिये अनंत व्यक्तिपने टिक रही हैं। आहाहा !

अनंत व्यक्तता अर्थात् प्रगटता, जितने तत्त्व और द्रव्य हैं, उतने वह आहाहा ! नष्ट नहीं होते, व्यक्तियाँ नष्ट नहीं होती जितनी व्यक्तियाँ अनंते अपने द्रव्य, गुण, पर्याय में हैं इतने अनंत द्रव्य, द्रव्य-गुण-पर्याय हैं। एक जगह रहने पर भी अपनी पर्याय से हटकर नष्ट नहीं होते नजदीक होने पर भी स्वरूप से च्युत नहीं होते। आहाहाहा ! एक क्षेत्र में शरीर कर्म, आत्मा रहने पर भी एक दूसरे पदार्थ में प्रवेश नहीं करते, एक जगह होने पर भी पर में नहीं परिणमते। आहाहाहा ! - ऐसा ज्ञान

सूक्ष्म है।

‘इसलिये वह टंकोत्कीर्ण जैसे (शाश्वत) स्थित रहता है’ शाश्वत रहते हैं भले एक प्रदेश में एक साथ अत्यंत निकट हो फिर भी स्वयं अपनी पर्याय से भिन्न होता नहीं। एक जगह है फिर भी उसमें प्रवेश करता नहीं, एक जगह है फिर भी उसरूप परिणमित होता नहीं। इसलिये अनंत वस्तुयें जितनी हैं उतनी टिक रहीं हैं। आहा ! इसलिये... है न ? जैसी स्थित हैं वहाँ के वहाँ पडी रहती हैं। आहाहा ! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय एक प्रदेश में एक साथ रहने पर भी वह पर्याय दूसरे को स्पर्श नहीं करती और यह पर्याय एक जगह रहने पर भी पररूप परिणमे नहीं। आहाहा !

- ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है। भगवान ने कुछ किया नहीं, भगवान ने तो जाना है। आहाहा ! पदार्थ स्वयं अपने स्वभाव में रहते हैं। एक जगह रहने पर भी (स्वरूप से) च्युत होते नहीं, और एक दूसरे को छूते नहीं। आहाहाहा ! अफीम और शक्कर जीभ को छूती है, कि नहीं ? तब कड़वी, मीठी लगती है न ? (यहाँ कहते हैं) अफीम और शक्कर जीभ को छूती नहीं। आहाहा ! प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय में रहा हुआ है, गुण तो त्रिकाल ध्रुव ही है। वे एक दूसरे को छूते नहीं, स्पर्श करते नहीं। ओहोहोहो ! शरीर की यह इन्द्रियाँ, दूसरे के शरीर की इन्द्रियों को छूती नहीं... और दूसरे के शरीर की पर्याय इस शरीर की पर्याय को छूती नहीं। आहाहा ! फिर भी यह भ्रम कैसा ? मुझे विषय में सुख होता है, शरीर को मैं स्पर्शता हूँ, आहाहा ! मैं ठंडे पानी को छूता हूँ, जीभ छूती है, इसलिये ठंडा लगने से प्यास बुझ जाती है - ऐसा है नहीं, ठंडा पानी गले को छूता नहीं। गले की पर्याय ठंडे पानी को छूती नहीं। आहाहाहा ! एक जगह रहने पर भी अपने स्वरूप से डिगता नहीं एक जगह रहने पर भी कोई किसी को छूता नहीं। आहाहा !

‘और समस्त विरुद्ध कार्य और अविरुद्ध कार्य के हेतुपने से जो हमेशा विश्व का उपकार करते हैं, टिकाये रखते हैं’ क्या कहते हैं ? प्रत्येक पदार्थ चाहे स्वभाव रूप परिणमो कि विभावरूप विभाव रूप जीव और पुद्गल यह दो, फिर भी विभाव रूप में परिणमे समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य के हेतुपने से जो हमेशा विश्व को... अर्थात् विश्व जो अनंत पदार्थरूप है, इस प्रकार अनंत पदार्थरूप में टिक रहे है। आहा ! एक दूसरे के कार्य को करते नहीं और अपना विरुद्ध अविरुद्ध कार्य स्वयं का अपने में है। इसलिये यह विश्व के अनंत पदार्थ जिस प्रकार भिन्न है उस प्रकार टिक रहे हैं। आहाहा ! यह तीसरी गाथा बहुत अच्छी है।

कार्य शब्द है न ! धवल में पाठ है, पर्याय से गुण कथंचित भिन्न हैं। इसलिये पर्याय से गुण विरुद्ध है। समझ में आया कुछ ? **धवल में पाठ है, जो विरुद्ध है...**

विरुद्ध के दो प्रकार (एक अपेक्षा से)... एक तो उत्पाद व्यय है, यह विरुद्ध है और गुण है वह अविरुद्ध है। क्योंकि उत्पादव्यय, उत्पाद व्यय इस तरह दो प्रकार हुये न ? उपजे और नाश, उत्पन्न और नाश अर्थात् विरुद्ध है और वस्तु है उसके गुण है वह अविरुद्ध है, उसमें उत्पादव्यय नहीं एक रूप है। दूसरी तरह उत्पाद और व्यय जो है पर्याय, उससे गुण कथंचित भिन्न है, इसलिये पर्याय से गुण विरुद्ध हैं। समझ में आया ?

प्रत्येक द्रव्य की जो पर्याय है वह उत्पाद-व्ययवाली एक समय में दो (प्रकार) से है। भाव-अभाव, उत्पाद वह भाव, व्यय वह अभाव है और गुण वह भाव स्वरूप, वह एकरूप इसलिये पर्याय से, गुण कथंचित भिन्न है, कारण कि (पर्याय) भाव अभाव स्वरूप है, यह (गुण) भाव स्वरूप (ही) है। कथंचित भिन्न हैं इसलिये पर्याय से गुण विरुद्ध है। समझ में आया ? अंदर के अंदर में अब, तथा गुण है वह ध्रुव से अभिन्न है, इसलिये वह विरुद्ध है। 'उत्पाद, व्यय, ध्रुव युक्त सत्' उत्पाद-व्ययरूप पर्याय गुण से (भी) कथंचित भिन्न है, क्योंकि यह उत्पन्न नष्ट होती है तथा गुण एकरूप रहता है। कथंचित भिन्न है इसलिये विरुद्ध है। पर्याय से गुण विरुद्ध है, यहाँ (पर्याय में) तो कार्य है विरुद्ध-अविरुद्ध और गुण यह कहीं कार्य नहीं, परंतु पर्याय के कार्य से... वही वही द्रव्य, पर्याय के कार्य से वही वही गुण, उत्पाद व्यय स्वरूप नहीं, इसलिये विरुद्ध हैं और स्वयं स्वयं के गुण से ध्रुव से उत्पाद व्यय से गुण कथंचित विरुद्ध हैं और गुण ध्रुव से अविरुद्ध हैं, उत्पाद व्यय और ध्रुव तीन शब्द है न ! उत्पाद व्यय से गुण कथंचित विरुद्ध हैं और गुण ध्रुव से अविरुद्ध हैं - ऐसा स्वरूप है।

ओहोहो ! तीसरी गाथा में कितना समाया है देखो ! अमृतचन्द्राचार्य ! जंगल में बसनेवाले ! आनंद में (लीन)। आहाहा ! थोड़ा विकल्प आया, बाहर आ गये, परंतु जिसकी रचना में निमित्तपना है वह टीकारूप रचना तो परमाणुओं की है, कारण कि परमाणु की पर्याय और उसका विकल्प वह ज्ञान पर्याय को छूता नहीं। टीका के जो रजकण है... यह अक्षर, इन अक्षरों को अमृतचन्द्राचार्य का विकल्प या गुण की पर्याय (स्पर्श करती नहीं) आहाहा !

अमृतचन्द्राचार्य ने - ऐसा कहा कि मैं शुरुआत करूंगा, समझाना (है न) आहाहा ! भाव (गुण) से शुरुआत करेंगे, फिर भी उस गुण की शुरुआत में जो ज्ञान भरा है पर्याय में, वह इस टीका के अक्षरों को छूता नहीं और टीका के अक्षर की पर्याय... (को) हमें जो विकल्प आया वह भी छूता नहीं। तब छूये बिना कैसे रचे ? आहाहा ! फिर भी - ऐसा कहते हैं कि ऐसी टीका के काल में टीका से मुझे विशुद्धि होओ। अनादि का कलुषित भाव मुझे है अभी, मैं मुनि हूँ, लिखते समय छठवें गुणस्थान

में हूँ फिर भी प्रमत्त-अप्रमत्त दशा वह मैं नहीं - ऐसा द्रव्य हमारी दृष्टि में, (आत्म द्रव्य) तैरता है।

टीका के काल में हमारे ज्ञान का क्षयोपशम कि विकल्प उसे छूता नहीं और टीका की पर्याय परमाणु से होती है। आहाहा ! (जगत की मान्यता में) बहुत बड़ा फर्क है, आहा ! विरुद्धकार्य (अर्थात्) स्वभाविक या वैभाविक पर्याय, अविरुद्धकार्य स्वाभाविक ऐसे हेतुपने से... स्वाभाविक और विभाविक कार्य के कारण... जो कि हमेशा विश्व का उपकार करते हैं विश्व अर्थात् अनंतपने जो चीज है वह अनंतपने ही टिक रही है। उस अनंत में कोई कम ज्यादा होता नहीं। क्योंकि अनंत जो है वह, किसी द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य को, चाहे विभाव रूपी कार्य हो... आहाहा ! फिर भी वह परपदार्थ के कारण नहीं, परपदार्थ को, उसकी पर्याय को वह पर्याय छूती नहीं और परपदार्थों की पर्याय, वह विकल्प को छूती नहीं। विरुद्ध कार्य जो विभाव... जो विकल्प आया है, वह विभाव है। आहाहा ! उस विभाव को कर्म के उदय की पर्याय छूती नहीं, उसीप्रकार टीका की पर्याय उस (विकल्प) को छूती नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा स्वरूप है।

- ऐसा यह विरुद्ध कार्य (होनेपर) भी, फिर भी जितना अस्तित्व है उसीप्रकार वह द्रव्य है और उससे अनंत द्रव्य, जिसप्रकार अनंत व्यक्तिरूप भिन्न है वह पूरा विश्वपना जिसप्रकार है, उसप्रकार टिक रहा है आहाहा ! विश्व मात्र अनंत पदार्थों का जो स्वरूप (है) इसमें एक पदार्थ की पर्याय जो दूसरे पदार्थ को छुये और करे, तो विश्व में जो द्रव्यों का अनंतपना है उतना अनंतपना रहता नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा उपदेश दिया।

वह अनंतपना ! विश्व अर्थात् अनंत अनंत तत्त्व और द्रव्य जितने और जिस रूप में हैं भले वह विरुद्ध कि अविरुद्धरूप परिणमें, स्वभाव या विभावरूप पर वह अपनी पर्याय में है। आहाहा ! एक क्षेत्र में रहा हुआ कर्मोदय है उसे भी विकार छूता नहीं और कर्म का जो उदय है, वह विकल्प को छूता नहीं। इसलिये अनंत व्यक्तपना, विश्व की अनंत व्यक्तियाँ, जितने तत्त्व है, उस प्रकार रहते हैं। उसमें एक भी तत्त्व का कहीं हीनपना कि अधिकपना होता नहीं। आहाहा ! यह तो सर्वज्ञ भगवान का ज्ञान है, यह तो सूक्ष्म बात है भाई !!

दिव्यज्ञान, प्रवचन है। प्रवचन, दिव्य वचन। ओहोहो ! संतो ने यह भी काम किया न ! - ऐसा निमित्त अपेक्षा कहा जाता है, परंतु उनका क्षयोपशम उस समय... आहाहा ! कहते हैं कि मैं परिभाषण प्रारंभ करता हूँ। वह स्वयं इस रूप में आ गये है न ! उसके कारण पूरा होगा। टीका पूरी होनेरूप रजकणों की पर्याय उसके

कारण होगी। आहाहा ! हमारे क्षयोपशम के ज्ञान से इस टीका की पर्याय होगी, वैसे क्षयोपशम बहुत है, इसलिये टीका में परमाणुओं की एसी पर्याय होगी - ' - ऐसा नहीं। कारण कि एक दूसरे द्रव्यों में कार्य कारण का मिश्रण होता नहीं।' आहाहा ! जिससे विश्व नाम अनंत पदार्थ जो जितनी संख्या में हैं उसी का उसी प्रकार विश्व है अनादि। आहाहाहा ! दूसरा द्रव्य उसे छोटा (कमजोर) कर दे। आहाहा ! तब प्रत्येक तत्त्व की शक्ति रहती नहीं। आहाहा !

एक समय की विकारी पर्याय भी, पर के कारण हो तो त्रिकाली पर्यायो का पिण्ड जो गुण है वह भी सिद्ध नहीं होता, वह गुण नहीं रहेगा तो ऐसे अनंत गुणों का एकरूप द्रव्य, वह द्रव्य भी नहीं रहेगा (यदि) पर के कारण हो। आहाहा ! गजब बात है न ! टीका हमारे से हो और कर्म का बंध हमारे से हो और कर्म का उदय मुझे राग कराये, एक समय एक क्षेत्रावगाह होने पर भी; - ऐसा हो तो अनंत अनंत विश्व है, विश्व अर्थात् अनंत पदार्थों का समूह है तो वह अनंत नहीं रहे। आहाहाहा ! न्याय समझ में आता है ? आहाहा ! तीसरी गाथा में..... (बहुत गम्भीर भाव भरे हैं)

हमेशा, तीनों कालों में विरुद्ध-अविरुद्ध कार्य के हेतुपने के कारण विश्व को विश्वपना अनंतपना है उसी प्रकार अनंतपना रहेगा। उसे टिकाये रखता है। जो अनंतपना है, जितनी संख्या में अनंतपना है वह अनंता निगोद के जीव विभावरूप भले परिणमे, परंतु उनका विभाव परिणमन यह एक, आहाहा ! एक राई जितना टुकड़ा लहसन का या प्याज का उसमें तो असंख्य शरीर और एक शरीर में अनंत जीव, एक जीव दूसरे जीव को छूता नहीं। उसी समय अनंत कार्माणशरीर अनंत जीव के साथ है फिर भी यह कार्माण शरीर जीव को छूता नहीं... आहाहाहा ! एक क्षेत्रावगाह आ गया न। आहाहा !

लहसन प्याज मूली का सफेद कंद, उसके एक टुकड़े में असंख्य शरीर, एक शरीर दूसरे शरीर को छूये नहीं। एक शरीर में अनंत जीव, एक जीव दूसरे जीव को छूये नहीं उसी समय अनंत जीवों के साथ प्रत्येक को कार्माण और तैजस शरीर अनंत रजकणों का पिण्ड (है) आहाहा ! वह भी आत्मा का विरुद्ध कार्य जो विभाव कार्य, वह अपने से हुआ है वह कर्म के कारण विरुद्ध कार्य हुआ नहीं। आहाहा ! इसलिये जितनी अनंत संख्या है, उतनी यों की यों अनादि से टिक रही है। आहाहा !

भले सिद्ध रूप में हो। वह तो अपनी पर्याय हुयी है उसे पर के कारण हुयी है... (सिद्ध पर्याय) आहाहा ! कर्म के अभाव के कारण केवलज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! और अनंत सिद्ध हुये अतः अनंत द्रव्यों की जितनी संख्या है उसमें

कमी आ गई - ऐसा नहीं। आहाहा ! गजब बात है तथा ऐसी बात कहाँ है ? आहा ! एक राई जितने टुकड़े में अनंत आत्मायें, सभी जीवों का श्वास एक, फिर भी वह जीव दूसरे के श्वास को छूता नहीं, और वह जीव अनंत जीवों की एक श्वास फिर भी एक जीव दूसरे जीव को छूता नहीं। आहाहाहा !

इसप्रकार जितनी संख्या में जितने द्रव्य (है) विश्व, उतना अनंतपने है उसरूप में टिकाये रखा है। **उपकार किया अर्थात विश्व में कम ज्यादापना होता नहीं अन्यथा विश्व का उपकार किया नहीं कहलाये। उपकार अर्थात जितने अनंत है उनमें फेरफार हो जाये, तो उपकार अर्थात जितना है उतना न रहे।** आहाहा ! अर्थात अनंत उपकार नहीं किया, जितना है उतने प्रमाण में रहा नहीं। आहाहा ! गजब बात करते हैं न ! जैन धर्म में ऐसी बात है - ऐसा सुनने को मिले नहीं। दया पालो व्रत करो, सामायिक, उपवास और प्रतिमा करो होगया (धर्म) जाओ। आहाहा ! अरे प्रभु पर तुम्हें अभी अनंत की, समय की, विश्व जितना है उतनी संख्या में है, उतनी संख्या में वह अपने से रहकर विश्व में इतने अनंत है उसे टिका रखा है अर्थात इसप्रकार इतना उपकार किया, उसमें कुछ फेरबदल हुआ नहीं। आहाहाहा ! (परस्पर जिओ और जीने दो) यह सभी निमित्त की बातें, यह सभी लिखते हैं न ? लोक के चित्र में नीचे लिखते हैं। कौन किसका उपकार करे भाई ! आहाहा ! यहाँ तो कहा है न विरुद्ध भाव हो कि अविरुद्धभाव हो, वह स्वयं अपने अस्तित्व में अपने से रहा है, उसने दूसरे को छुआ ही नहीं और दूसरे के कारण हो तो वह पर्याय अल्प कहलाय, उसकी पूरी नहीं हुयी और वह पूरी नहीं हुयी अर्थात वह द्रव्य पूर्ण नहीं हुआ। आहाहाहा !

एक समय में विकार की पर्याय भी जो पर से हो - ऐसा कहो तो उस पर्याय में कमजोरी आ गई। उस द्रव्य की पर्याय नहीं रही, और वह न रही तो उन पर्याय का पिण्ड है गुण वह गुण पूरा नहीं रहा और अनंत गुणों का पिण्ड द्रव्य वह द्रव्य पूरा नहीं रहा देवीलालजी ? आहाहा ! ऐसी बात है। आहाहा ! - ऐसा बाहर नहीं चले। एकदम समझें नहीं न ? आहाहा !

भले (जीव) गृहीतमिथ्यात्वरूप परिणमे, अनंतजीव एक प्रदेश में एकट्टे रहे हों और मिथ्यात्वरूप परिणमे। **निगोद का गृहीतमिथ्यात्व तो यहाँ का कोई गया हो उसकी अपेक्षा यह है। शेष तो अगृहीतमिथ्यात्व है। यहाँ से गया हो और तथा उसने ग्रहण किया होता है - ऐसा है शास्त्रों में...** (गृहीतमिथ्यात्व) फिर भी पर्याय का जो कार्य है, वह उन उन द्रव्यों के अपने अस्तित्व को बताता है, तथा इस प्रकार जितने तत्त्व है उसका अस्तित्व भिन्न भिन्न विश्व को अर्थात अनंत है उसे उसप्रकार उपकार

करते हैं। अर्थात् अनंत में कमी आती नहीं, अनंत में अधिकपना होता नहीं। यही विश्व का उपकार अर्थात् इसतरह से विश्व टिक रहा है। आहाहाहा ! - ऐसा उपदेश ! अब इसमें पालना क्या, करना क्या इसमें ? आहाहा !

इसके लिये तो बात करते हैं, विरुद्धभाव है वह जीव में बंध भाव (है) वह निंद्य है, यह विरुद्ध है, एकरूप में है उसका भाव, विरुद्ध, है उसके अस्तित्व में और उससे उसका अनंतपना, जितना है अनंतविरुद्ध भाववाला इसलिये इसप्रकार अनंत रूप से टिक रहा है, परंतु उसका वास्तविक स्वरूप त्रिकाली है उसमें विरुद्धभाव जो बंध भाव राग, यह बंध भाव विसंवाद खड़ा करता है, दुःख उत्पन्न करता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! जो कि दुःख उत्पन्न है यह तो उसकी पर्याय का कार्य है, परंतु अब यहाँ तो द्रव्य स्वभाव बताने को... आहाहाहा !

उसका पर्याय भाव वह तो सिद्ध करके बताया है। अनंत अनंत इसप्रकार... पर इस आत्मा के अंदर बंध भाव वह निमित्त के संबंध (लक्ष्य) से खड़ा हुआ है वह उसका विभाव भाव है, यह बंध भाव है, वस्तु अबंध स्वरूप है। आहाहा ! इस बंध भाव से भले विश्व को विश्वपना जितना अनंत है, वैसा अनंतरूप भले रहे, परंतु यह एकपने से बंधपना विपरीत है, विसंवाद खड़ा करता है। दुःख उत्पन्न करता है। आहाहाहा ! जो कि पहले तो सिद्ध किया कि **भले दुःख कार्य हो परंतु वह है अपने से उसे पर से कुछ लेना (देना) है (- ऐसा नहीं) इस प्रकार ही अनंत टिक रहे है।** परंतु अब यहाँ एक को जो बंध का संबंध कहना... आहाहा ! त्रिकाली आनंद के नाथ को एकक्षण के राग का संबंध, बंध का भाव उसे है - ऐसा कहना, जानना यह विसंवाद है, विसंवाद है, विपरीत भाव है, विपरीत कथन है, विपरीत भाव अर्थात् दुःखरूप भाव है। आहाहा !

कारण कि जीव और पुद्गल दोनों में - ऐसा विभाव भाव है। फिर भी विभाव भाव हुआ है उससे वह अपना उस समय होने योग्य है, और उससे उस द्रव्य की पूर्णता सिद्ध होती है, यह विभाव पर के कारण हुआ हो तो द्रव्य की पूर्णता (रूप) अस्तित्व की सिद्धि नहीं होती।

परंतु यहाँ तो इसके उपरांत बात आगे ले जाना है। आहाहा ! 'इस प्रकार सभी पदार्थों का भिन्न-भिन्न एकपना सिद्ध होने से... 'सर्व पदार्थों का भिन्न-भिन्नपना, एकपना सिद्ध होने से... ओहोहोहो ! जीव नामक समय को बंधभाव से ही विसंवाद की आपत्ति आती है'। आहाहा !

अब वहाँ ले गये... क्योंकि वस्तु स्वयं अबंध स्वरूप है। आहाहाहा ! उसमें राग के बंध भाव का संबंध... (से) विसंवाद की आपत्ति आती है। आहाहाहा ! विपरीत

संवाद, विपरीत कथन, विपरीत भाव आनंद से विपरीत दुःख की आपत्ति उसे आती है। आहाहा ! अबन्ध प्रभु को बंध - ऐसा संबंध - ऐसा, दूसरा भाव, आहाहा ! उससे उसे दुःख की उत्पत्ति होती है। यह प्रभु स्वयं त्रिकाल आनंद स्वरूप है (आत्मा) त्रिकाली प्रभु अनाकुल आनंद स्वरूप है उसमें विसंवादानाम दुःख उत्पन्न होता है। द्रव्य को बंध भाव का संबंध कहने से द्वैतपना खड़ा हुआ। एकड़े एक और बगड़े बे (एक अकेला ही ठीक है, दो होने पर बिगड़ जाता है) आहाहा ! अकेला जो रहना चाहिए वह सुखरूप आनंद अभेद रत्नत्रय का उसका परिणमन चाहिए। आहाहाहाहा !

भगवान आत्मा आनंद का सागर प्रभु... उसकी प्रतीति ज्ञान और रमणता निर्विकल्प आनंद सहित, होना चाहिए। तब वह आत्मा का वास्तविक स्वरूप कहलाये। समझ में आया ? आहा ! पहले समुच्चय (रूप से) तत्त्व-द्रव्य का स्वरूप कहा, विभाव सहित द्रव्य का स्वरूप, वह वह अपने से अपने में है, दूसरों से नहीं, इसलिये एक दूसरे का मिलावटपना नहीं और अनंत में जितने तत्त्व हैं उसमें कही भी बिलकुल कमी आती नहीं।

इसप्रकार विभाव कार्य भी उसके द्रव्य को और उसके गुण को परिपूर्ण सिद्ध करने के लिए उसका है - ऐसा सिद्ध किया। आहाहाहा ! अब ऐसी बातें। परंतु यहाँ प्रभु अब एक रूप वस्तु अबंध स्वरूपी प्रभु, मुक्त स्वरूप प्रभु (आत्मा), उसे बंध भाव का संबंध कहना... आहाहा ! अरे जरा शांति से सुने, बापू यह कहीं, यह तो घर के तत्त्व का स्वरूप है - ऐसा इसकी बात है। यह कोई व्यवहारनय से - ऐसा निश्चय नय से - ऐसा... व्यवहारनय का विषय सिद्ध किया, यह विषय है, विरुद्ध कार्य हैं यह सिद्ध तो किया। यह विषय है, विरुद्धकार्य है, यह तो सिद्ध किया। आहाहाहा ! परंतु अभी वस्तु स्वरूप जो है, उससे व्यवहारनय का राग का विषय वह विरुद्ध है। दोनों नयों को विरुद्ध कहा है न ? आहाहा ! गजब बात है। ओहोहो ! दिगम्बर संतों की वाणी और उनका भाव अलौकिक है !! प्रभु !

मूल जैनपना वहाँ खड़ा रहा है, क्योंकि यहाँ राग को जीता नहीं और राग के संबंधवाला प्रभु को (आत्मा को) कहना आहाहा ! यह दुःखरूप है। आहाहा ! 'घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन' यह राग की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता करे तब उसे जैन कहते हैं। आहाहाहा ! जैनपना जिनस्वरूपपना जीव का स्वरूप है। घट घट अंतर जिन बसे... वीतरागस्वरूप, जो उसका स्वरूप है स्वभाव है त्रिकाल है (जीव) यह तो वीतरागस्वरूप है - ऐसा वीतरागस्वरूप को कायमी असली स्वभाव के साथ नकली राग का संबंध जोड़ना ही इसे बंध भाव है। आहाहा ! यह

विसंवाद है, दुःख है आकुलता है खेद है। आहाहा ! - ऐसा है।

भिन्न-भिन्नपना एकपना सिद्ध होने से **जीव नामक समय को बंध कथा से, कथा शब्द तो भाषा का प्रयोग है, बंध कथा वाचक है परंतु वहाँ बंध भाव लेना। (समझना) आहाहा ! बंध कथा से कहीं दुःख होता नहीं वह तो भाषा है भाव बंध (से) होता है।** आहाहाहा ! प्रभु जिनस्वरूपी आत्मा, अरे, उसे छोटे से छोटे राग के रजकण का, राग के रजकण का, संबंध जानना, आहाहा ! यह विसंवाद है।

'तो फिर बंध जिसका मूल है बंध जिसका मूलकारण है - ऐसा पुद्गल कर्म के प्रदेश में स्थित होना अर्थात् भाव-बंध जिसका मूल है - ऐसे पुद्गल कर्म के प्रदेश... ऐसे मोह, राग, द्वेष। पुद्गल, कर्म के प्रदेश अर्थात् मोह राग द्वेष। आहाहा ! बंध जिसका मूल है अर्थात् कि मोह मिथ्यात्व और रागद्वेष जिसका मूल है वह जिसका मूल पुद्गल कर्म में स्थित होना वह जिसका मूल - ऐसा पर समयपना है। वह स्वसमयपना नहीं रहा। आहाहा !

मोह तथा राग द्वेष का संबंधसे (जीव को) बंध भाव होता है यह अबंध को बंध भाव के संबंध से, आहाहा ! पर समयपना खड़ा होता है, अनात्मपना खड़ा होता है। आहाहाहा ! पहले तत्त्व सिद्ध करने के लिए विरुद्ध और अविरुद्ध से कहा, पर अब वास्तविक आत्मा... आहाहा ! जिसे आत्मा कहा, वह वास्तविक आत्मा अब, आहाहा ! जिसे आत्मा कहें, वह। पुण्य पाप के भाव वह अनात्मा, आहाहाहाहा ! जैसे विरुद्ध और अविरुद्ध कार्य में, कर्म का कोई संबंध के कारण नहीं, वह तो उसका अपना स्वयं सिद्ध स्वरूप है। यह तो साधारण बात की, अब इसमें आत्मतत्त्व जो है... वहाँ तो पुण्य-पाप के भाव सहित विरुद्ध कार्य से भी टिक रहा है तत्त्व, उसे दूसरे कोई, दूसरे कारण (से) कम या अधिकपना हुआ - ऐसा नहीं इतना सिद्ध करके, अब यहाँ (असली) आत्मा सिद्ध करना है। आहाहाहा ! इस आत्मा में जो कुछ पुण्य और पाप... विकल्प जो राग उठता है, वह बंध भाव अबंध भाव के साथ दुःखरूप है, विसंवाद खड़ा होता है, विपरीत भाव खड़ा होता है, उससे विपरीत उपदेश खड़ा होता है कि जीव के रागद्वेष है। आहाहा ! समझ में आया ?

तीसरी गाथा बहुत ऊंची है, यह तो सारी भूमिका बारह गाथाओं में बाँधते है फिर तेरह वीं गाथा से उसका विस्तार करेंगे। आहाहा ! पहले प्रत्येक द्रव्य को विभाव स्वभाव परिणमित होने पर भी अनंतद्रव्य है, उसमें कहीं कमी नहीं आती। दूसरों के कारण होता नहीं, इसलिये वहाँ खामी आती नहीं। अनंत द्रव्यों में कम ज्यादापना होता नहीं, परंतु अब यहाँ आत्मद्रव्य को पुण्यपाप के भाव के साथ... आहाहा ! तत्त्व-आत्मतत्त्व को पुण्यपाप के भाव के संबंध से उसकी पर्याय बुद्धि से बंध भाव खड़ा

होता है। आहाहाहाहा !

वस्तु, जो भगवान आत्मा तो अनाकुलज्ञान और अनाकुल आनंद से भरा हुआ प्रभु है। उसे राग का संबंधवाला, बन्ध भाववाला, दूसरेपनेवाला, द्वैतपनावाला, अद्वैत और द्वैतपनावाला... आहाहाहा ! भगवान अंतर में अनंतगुण स्वरूप शुद्ध स्वरूप अद्वैत है, उसे यह राग का संबंध है वहाँ द्वैतपना दिखता है। आहाहा ! इसलिये यह विसंवाद है। **विपरीत संवाद नाम कथन परंतु विपरीत है, और उसका भाव भी विपरीत है। जीव को रागवाला कहना, आहाहाहा ! यह सिद्धांत ही विपरीत है। आहाहाहा ! और रागवाला जानना वह दृष्टि ही विपरीत है...** - ऐसा तत्त्व है आहाहा ! नये व्यक्तियों को, पुराने जैन क्रियाकाण्डवाले हों उन्हें - ऐसा लगे क्या है यह - ऐसा ! यह तो कहीं जैन की बात है ? जैन (धर्म) में तो छःकाय की दया पालना नहीं मारो, नहीं मारो, स्तुति में पहले आता है व्याख्यान के पहले... नहीं मारो, नहीं मारो - ऐसा भगवान का उपदेश है। आहाहा !

पर को मार सकता नहीं, पर को छूता नहीं, पर की दया पाल सकता नहीं, वह तो पर से भिन्न बताया, अब इसके विभाव (भाव) जो क्षणिक हैं और त्रिकाली स्वभाव जो पवित्र आनंद का नाथ प्रभु है उसकी एक समय की क्षणिक दशा, विकृतदशा है भले उसके कार्य में उसकी पर्याय परंतु उस त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को, यह राग का छोटे से छोटा कण, दया का दान का भक्ति का व्रत का... असंबंधी प्रभु को ऐसे राग के संबंधवाला कहना वह दुःख रूप दृष्टि है। आहाहाहा ! यह समयसार !! आहाहाहा !

तो फिर जो बंध का मूल जो भाव हुआ, क्षणिक मोह, राग, द्वेष, त्रिकाली स्वभाव के साथ एक समय का मोह, राग, द्वेष का संबंध हुआ, वह पर समयपना हुआ, आहा ! वह अनात्मपना हुआ, राग स्वयं आत्मा नहीं। आहाहाहा ! **और उसे राग का संबंधवाला जानना, यह अनात्मपना है। आहाहाहा ! पर की अपेक्षा से हुआ - ऐसा यहाँ नहीं लिखा। वह हुआ तब भी स्वयं से हुआ - ऐसा कहके स्वतंत्र सिद्ध किया; अब यहाँ तो क्षणिक विकृत अवस्था हुयी है, त्रिकाल स्वभावरूप वस्तु जो है यह आत्मा और यह आत्मा के स्वभाव की एक समय की क्षणिक विकृत दशा... आहाहा ! पर्याय बुद्धि छुटाते है।** उसे राग का, द्वेष का, मिथ्यात्व के, बंध का मूल तो यह है। आहाहा ! इसलिये भगवान आत्मा एकरूप अद्वैत चैतन्यस्वभाव होनेपर भी बंध का दैत्यपना उसे लागू होजाता है, वह शोभा नहीं देता। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है !

लोग तो ऐसी बात करते हैं कि देश की सेवा करो, एक दूसरे को मदद

करो, अहिंसा, दूसरे जीवों की दया पालना, और एक दूसरे का उपकार करना, 'परस्पर उपग्रहों जीवानाम्'... उसका यह अर्थ है सर्वार्थसिद्धि वचनिका में, यह अर्थ किया है निमित्त कुछ करता नहीं। सर्वार्थसिद्धि वचनिका में अर्थ किया है जयचन्द्र पण्डितजी ने। आहाहाहाहा !

एक दूसरे को कोई उपकार करता है ऐसे अर्थ में उपकार (शब्द) नहीं जैसे गति करते समय धर्मास्तिकाय का उपकार है अर्थात् क्या ? सहायक है अर्थात् क्या ? कि यहाँ कार्य के समय वह चीज सामने है - इतना। यह कार्य उससे होता है, और वह विकार पर में होता है - ऐसा नहीं, पर से होता है - ऐसा नहीं, उसकी पर्याय में त्रिकाली स्वभाव का वास्तविक तत्त्व जो त्रिकाल है उसमें एक क्षणिक पर्याय को राग का संबंध कहना... विसंवाद है, दुःखरूप है।

उससे उत्पन्न होनेवाला परसमय स्वसमयरूप दोपना होगया। स्वसमय में राग का संबंध यह परसमय। आहाहा ! स्वरूप स्वयं है, इसप्रकार उसमें ठहरे यह तो स्वसमयपना है। यह तो एकपना हुआ स्वयं एक है उसमें स्वसमय रूप ठहरता है, वह एकरूप ठहरता है। उसमें दूसरों का संबंध है नहीं। ओहोहो ! अरेरे कहाँ जाओगे भाई, तुम्हें क्या करना है ? तुम्हें तुम्हारा करना है कि क्या करना भाई ? **यहाँ कहते हैं एकपना वह स्वसमय है, अर्थात् द्रव्य है वह स्वसमय है। परंतु द्रव्य को स्वीकृत करे उसे स्वसमय कहा जाता है। आहाहाहा ! वस्तु तो वस्तु है, यह तो त्रिकाली समय स्वरूप ही है। परंतु उसका स्वसमयपना और आत्मा - ऐसा पवित्र शुद्ध ध्रुव है... - ऐसा कब कहलाये कि उसकी दृष्टि में अभेद का परिणमन हो, तब उसे स्वसमय हुआ - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहा !**

(इसकी विशेष व्याख्या अब आयेगी.....)

